पंचम अध्याय

निराला की वेदना की अभिव्यक्ति और उसकी महादेवी और प्रसाद के साथ तुलना

निराला को निजी जीवन के दुखों के साथ साहित्य जगत में मिली अवमानना भी कम न थी। फिर भी उनकी कविता में वैयक्तिकता सामाजिकता में तिरोहित हो जाती है। प्रसाद का आँसु एक विरह काव्य है उसमें वियोग श्रृंगार की प्रधानता है। कवि ने प्रेमी की वेदनानुभूति, अतीत की स्मृति आदि का वर्णन करने का प्रयास किया है। प्रसाद का काव्य अंतर्द्वन्द्व से अधिक जुड़ा है। जबकि निराला के काव्य में बस्तुमूखी तत्व की प्रधानता है। निराला के दूसरे समकालीन कवियित्रि महादेवी वर्मा का व्यक्तित्व अंतर्मुखी था, उनके इसी अंतर्मुखी स्वभाव ने उनके दुख और वेदना को वाह्यजगत से जोड़ने के बदले अन्तर्जगत से जोड़ा। उनमें तथ्यों के प्रति मोह नहीं निराला जैसी बहिर्मुखता भी नहीं है।

'निराला ने अपनी पुत्री सरोज की स्मृति में शोकगीत लिखा और उसमें अपने निजी जीवन की अनेक बाँतें साफ-साफ कह ड़ाली। संपादकों द्वारा मुक्त छंद की रचनाओं को लौटाया जाना, विरोधियों के शाब्दिक प्रहार, मातृहीन लड़की की ससुराल में पालन-पोषण, दूसरे बिबाह के लिए निरंतर आते हुए प्रस्ताव और उन्हें ठुकराना, सामाजिक रुढ़ियों को तोड़ते हुए एकदम नए ढ़ंग से कन्या का बिबाह करना, उचित दवा दारु के अभाव में *सरोज* का देहावसान, और उस पर कवि का शोकोद्‌गार। यह सब पंत के 'उच्छ्‌वास' और 'आँसु' की वैक्तिकता से हजार डग आगे है। कविता क्या है, कवि की पुरी आत्मकथा है, इसमें जो शेष रहा, वह बन - बेला में पूरा हो गया। यहाँ केवल आत्म-कथा

नहीं बल्कि अपनी कहानी के माध्यम से एक-एक कर पुरानी रुढ़ियों और आधुनिक अर्थ पिशाचों पर प्रहार किया गया है।'1

निराला अपने ही समाज की रुढ़ियों, कुरीतियों से व्यथित और दुखी है। वे कान्यकुब्ज ब्राम्हणों को कुछ इस तरह सम्बोधित करते हैं -

"ये कान्य कुब्ज-कुल कुलंगार,
खाकर पत्तल में करे छेद,
इनके कर कन्या अर्थ खेद,
इस बिषम बेली में विष ही फल
यह दग्ध मरुस्थल नहीं सुजल।"2

कान्यकुब्ज ब्राम्हण समाज की ऐसी निन्दा हिन्दी साहित्य में शायद ही और किसी ने की होगी। इसी के साथ वे गवांर दामाद का चित्रण करते हैं जिसके चमरौंधे जुते से निकलते हुए गंदे दुरगन्धयुक्त पैरों को अंधे की भाँति पूजने से वे विचलित दिखाई देते हैं-

"जो यमुना के से कछार
पद फटे विवाँई के उधार
खाये के मुख ज्यों पियेतेल
चमरौधा जूते से संकेल
निकले जी लेते घोर गंध,
उन चरणों को मैं यथा अंध,
कल प्राण-प्राण से रहित व्यक्ति,
हो पूजूँ, ऐसी नहीं शक्ति,
ऐसे शिव से गिरजा विवाह,
करने की मुझको नहीं चाह।"3

हिन्दी साहित्य में निराला की तरह आत्मभिव्यक्ति प्रसाद ने भी की है। प्रसाद ने आत्मकथा नहीं लिखने के निश्चय के वावजुद अपनी आपबीती कह ही ड़ाली। कवि ने निराला की तरह अपने जीवन की दुर्बलताओं की लम्बी सूची तो नहीं पेश की फिर भी यह तो कह ही दिया 'तुम सुनकर सुख पाओगे, देखोगे यह गागर रीति' 'जिस संयत हृदय ने अपनी भूलों के साथ ही औरो की प्रवंचना दिखलाने से इनकार किया, उसी ने अपने मधुमय जीवन की झाँकी देने में संकोच नहीं दिखलाया और कहा कि -

"मधुप गुनगुनाकर कह जाता कौन कहानी अपनी
मुरझाकर गिर रही देखो पत्तियाँ कितनी आज घनी
उज्ज्वल गाथा कैसे गाउँ मधुर चाँदनी रातों की
अरे खिलखिलाकर हँसते होने वाले उन बाँतों की
मिला कहाँ वह सुख जिसका स्वप्न देखकर मैं जाग गया
आलिंगन में आते-आते मुसकाकर जो भाग गया
जिसके अरुण कपोलों की मतवाली सुंदर छाया में
अनुरागिनी उषा लेती थी निज सुहाग मधुमाया में
उसकी स्मृति पाथेय बनी है थके पथिक की पंथा की
सीवन को उधेड़कर देखोगे क्यों मेरी कंथा की।"4

रुढ़िग्रस्त समाज में पुरुषों की ऐसी स्थिति है कि वह अपनी आत्मभिव्यक्ति भी खुलकर कर सकने में असमर्थ रहता है, तो पुरुष प्रधान समाज में नारी की स्थिति क्या होगी इसका अनुमान आसानी से लगाया जा सकता है। ऐसे में भी महादेवी ने अपने गीतों में वैयक्तिकता की अभिव्यक्ति की और उसके लिए उन्हें विरोध भी झेलना पड़ा। ऐसा हुआ तो महादेवी ने रहस्य का सहारा लिया। अपनी वैयक्तिक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति के लिए रहस्यवाद का आश्रय ग्रहण किया। स्थूल धार्मिक आवरण तो वे ले नहीं सकती, इसलिए ऐहिक क्षुद्रता से उसे बचाने के लिए उसे रहस्यात्मकता के आसन पर प्रतिष्ठित किया ।

महादेवी वर्मा ने नारी होने के कारण ऐसा किया यह तो समझा जा सकता है, लेकिन पुरुष होकर प्रसाद ने भी आँसू के दूसरे संस्करण में उसे लोकमंगलकारी और रहस्यात्मक बना ड़ाला। जबकि आँसू का प्रथम संस्करण शुद्ध ऐहिक प्रेम की विरह वेदना से ओत-प्रोत है। लेकिन यह निराला ही है जो कि संपादकों के गुन गिन-गिन कर घास नोच-नोच कर इधर उधर फेकते थे। उस समाज व्यवस्था को भी याद करते हैं जिसमें वे अपनी कन्या का समुचित पालन-पोषण करने में भी असमर्थ रहते हैं। यह निराला ही है जो तमाम सामाजिक रुढ़ियों को चुनौति देते हुए अपनी कन्या के रुप का वर्णन खुलकर कर सके यहाँ तक कि 'पुष्प सेज तेरी स्वयं रची' कहने से भी नहीं हिचकिचाते।

आलोचकों ने छायावादी कविताओं का विरोध करते हुए पहले तो उसे अलौकिक बताया फिर झूठा भी कह दिया। यहाँ इनके कथन में जो असंगति है उस पर लोगो का ध्यान नहीं गया। यदि ये कविताएं आध्यात्मिक हैं और साथ ही साथ एकदम झूठी हैं तो इसका मतलब बिलकुल साफ है कि इन कवियों की आधयात्मिकता झूठी है और अगर आध्यात्मिकता ही झूठी है तो उनमें जो सच है वह पूर्णतः लौकिक है। महादेवी की व्यथा उनके इन पंक्तियों में व्यक्त होती है -

"मैं अनंत पथ में लिखती जो
सस्मित सपनों की बाँतें
उनको कभी न धो पाएँगी
अपने आँसू से रातें"

अथवा

"कैसे कहती हो सपना है
अलि, उस मूक मिलन की बात
भरे हुए अब तक फूलों में

मेरे आँसू उनके हास।"5

महादेवी का असीम प्रेम कल्पना के पंख लगा कर मुक्त जगत में उड़ जाना चाहता है, क्योंकि उनका मन सामाजिक सीमा और बंधनों से घबड़ा उठा था। माहादेवी कल्पना लोक में भी किसी प्रकार की सीमा स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं -

"द्रुत पंखों वाले मन को
तुम अंतहीन नभ होना
आते जाते मिट जाउँ
पाउँ न पंथ की सीमा।"6

प्रेम का यह रहस्यवाद सिर्फ महादेवी में ही है ऐसा नहीं है प्रसाद और निराला में भी ऐसी रहस्य भावना देखने को मिलती है। निराला जिस विराट की उपासना करते हैं उसमें भी वैसी ही रहस्य भावना है जो विराट प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त होती है। जब तक हम क्षुद्र सीमाओं में बंधे रहते हैं तबतक हमारी बुद्धि भी सीमाओं में बंधे रहने के कारण सोचने में अक्षम होती है और जैसे ही हम उस सीमा से उपर उठ कर सोचते हैं हमें सबकुछ समझ में आने लगता है। तुलसीदास कविता में कवि निराला की उड़ान इसी उन्मुक्त आत्मविस्तार का प्रतीक है।

"प्रसाद का आत्मविस्तार एक अतीन्द्रिय आनंदानुभूति के रुप में अभिव्यक्ति पाता है। प्रसाद की जिज्ञासा, अतींद्रियता और विराटता में पुरानी रुढ़ियों के प्रति न तो वैसा विद्रोह है और न आत्म विस्तार की तीव्र आकांक्षा।"7

छायावादी कवि अपने इस आत्म विकास के बारे में अधिक स्पष्ट नहीं थे। इसीलिए जहाँ वे अपने असीम, अज्ञात और विराट को प्रियतम के रुप में व्यक्त करते हैं, उस पर वे एक आवरण ड़ाल देते हैं। यदि प्रसाद के यहाँ -

"शशि मुख पर घूघट डाले
अंचल में दीप छिपाए
जीवन की गोधुली में
कौतुहल से तुम आए"

की अनुभूति है तो महादेवी का प्रिय भी -

"रजत रश्मियों की छाया में धूमिल घन सा वह आता।"

और कभी कभी तो यह आवरण और भी गाढ़ा हो जाता है -

"करुनामय को भाता है तम के परदे में आना।"8

प्रसाद के 'आँसू' ने बहुत से लोगो को आकर्षित किया। इसमें जो प्रेम वेदना है उसमे नियतिवाद और दुखवाद का करुण स्वर सुनाई देता है। इस सम्बन्ध में रामचन्द्र शुक्ल कहते हैं - 'जीवन के प्रेमविलास मधुर पक्ष की ओर स्वाभाविक प्रवृत्ति होने के कारण वे उस प्रियतम के संयोग वियोग वाली रहस्यभावना में -- जिसे स्वभाविक रहस्यभावना से अलग समझना चाहिए --- रमते प्रायः पाये जाते हैं। प्रेमचर्या के शारीरिक व्यापारों और चेष्टाओं(अश्रु, स्वेद, चुंबन, परिरंभण, लज्जा की दौड़ी हुई लाली इत्यादि) रंगरेलियों और अठखेलियों, वेदना की कसक और टीस इत्यादि की ओर इनकी दृष्टि विशेष जमती थी। इसी मधुमयी प्रवृत्ति के अनुरुप प्रकृति के अनन्त क्षेत्र में भी वल्लरियों के दान, कलिकाओं की मंद मुस्कान सुमनों के मधुपात्र पर मंडराते मलिंदों के गुंजार, सौरभ पर समीर की झपक लपक, पराग मकरंद की लुट, उषा के कपोलों पर लज्जा की लाली , आकाश और पृथ्वी के अनुरागमय परिरंभ, रजनी के आँसु से भीगे अंबर, चंन्द्रमुख पर शरदघन के सरकते अवगुंठन, मधुमास की मधुवर्षा, और झूमती मादकता इत्यादि पर अधिक दृष्टि

जाती थी। अतः इनकी रहस्यवादी रचनाओं को देखकर चाहे तो ये कहें की इनकी मधुवर्षा के मानस प्रसार के लिए रहस्यवाद का पर्दा मिल गया अथवा यों कहें कि इनकी सारी प्रणयानुभूति ससीम पर से कूदकर असीम पर जा रही।'9

महादेवी वर्मा की वेदना की अनुभूति और उसकी अभिव्यक्ति

महादेवी वर्मा का दुखवाद एक नया रुप ग्रहण करता है। काव्य को छायावाद से और छायावाद को रहस्यवाद से जोड़कर उन्होंने एक नया विचार सुत्र दिया जो महत्वपूर्ण दिखाई देता है। जैसे व्यक्ति की आत्मा और काव्य की आत्मा परस्पर गुणों से युक्त शायद ही हो सके। उन्होंने पार्थिव की अपार्थिवता को कला का मर्म माना है। इसी के सहारे वे अज्ञात सौन्दर्य लोक में पहुँचना सम्भव मानती हैं। उनकी कला और कविता में यही प्रवृत्ति देखने को मिलती हैं।

नीहार के गीतों में करुणा और वेदना देखी जा सकती है। इन वेदनाओं का प्रेरणा स्रोत अज्ञात का आकर्षण है क्योंकि उसी से करुणा और वेदना उत्पन्न हुई है। विराट संगीत की प्रतीति और अपनी असमर्थता का बोध, अभिव्यक्ति का स्वरुप निर्धारित करता है। स्वर के साथ चित्रमयता भी जाग्रत हो जाती है-

"पीड़ा का सम्राज्य बस गया, उस दिन दुर क्षितिज के पास।
मिटना था निर्वाण जहाँ नीरव रोदन था पहरेदार।"10

नीरवता के साथ हाहाकार ही महादेवी के आँसुओं की करुण कथा बन जाता है जिसे उन्होंने शब्द-बद्ध कर दिया।

नीरजा की कविताएँ नयनों के अश्रु नीर से आरंभ होती है और अंत तक समुद्र की प्यासी लहरों का विस्तार नाप लेती हैं। ***नीरजा*** का केन्द्रीय भाव ही है -

"विरह का जलजात जीवन , विरह का जलजात।
वेदना में जन्म, करुणा में मिला आवास,
अश्रु चुनता दिवस इसका अश्रु चुनती रात।"11

(ख) महादेवी की वेदना का मानव से पशु-पक्षी तक फैलाव

छायावादी कवियों ने प्रकृति के अनेक चित्र खींचे हैं। प्रकृति के चित्रों में गगन में बक पंक्ति, कोकिल का आलाप, पपीहे की विरहाकुल बोली, तोता मैना का संवाद, बुलबुल की प्रेम कहानी आदि सभी अन्तर्भूक्त हो जाता है। महादेवी के काव्य में भी प्रकृति के इस रुप का वर्णन है, किन्तु उनके प्रकृति वर्णन में प्रकृति के पाँचो तत्त्व सक्रिय हैं और एक दूसरे में घुले मिले हैं---

"अवनी अम्बर की रुपहली सीप में
तरल मोती सा जलधि अब कांपता
तैरते घन मृदुल हिम के पुंज से
ज्योत्सना के रजत पारावार में।"12

यहाँ महादेवी ने अपनी कल्पना के सहारे एक विराट चित्र की सृष्टि की है। उन्होंने अवनि और अम्बर की विशाल सीपी में अपार जलधि के तरल मोति को प्रतिष्ठित किया है। ये मोती प्रतीक रुप में मानव से लेकर पशु-पक्षी और अन्य जीव भी हो सकते हैं। 'महादेवी ने छायावाद को तत्वतः प्रकृति के बीच में जीवन का उद्‌गीध माना है।'13 महादेवी का दृष्टिकोण प्रकृति के प्रति आध्यात्मिक, रहस्यात्मक तथा आस्तिक है। 'महादेवी प्रकृति के सूक्ष्म सौन्दर्य में किसी परोक्ष सत्ता का आभास देखती हैं। इस(छायावादी) युग की प्रायः सभी रचनाओं में किसी न किसी अंश तक प्रकृति के सूक्ष्म सौन्दर्य में व्यक्त किसी परोक्ष सत्ता का आभास रहता भी है और प्रकृति के व्यष्टिगत सौन्दर्य पर चेतनता का

आरोप भी।'14 इसी सौन्दर्यानुभूति के कारण महादेवी ने सर्ववाद को माना है। जिस सर्ववाद में जड़ - चेतन सभी शामिल है। यह सूक्ष्म सौन्दर्यानुभूति रीतिकालीन स्थूल सौन्दर्य के विरोध में है। सदियों से कवियों ने दैहिक सौन्दर्य के आगे और कुछ देखा ही नहीं। छायावाद में कवियों ने प्रकृति में सौन्दर्य देखा, पशु-पक्षियों के कलरव में संगीत महसूस किया, नदियों के कल-कल में गीत सुने अर्थात प्रकृति और जीवन के सूक्ष्म सौन्दर्य को असंख्य रंग रुपों में अपनी भावनाओं द्वारा सजीव करके उपस्थित किया।

महादेवी कहती है छायावाद ने मनुष्य और प्रकृति के सम्बन्धों को एक नया रुप दिया और इस तरह उसे पहले से अधिक सजीव बनाने में छायावाद का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। महादेवी ने प्रकृति के खंड-खंड सौन्दर्य रुप को अखण्डरुप में देखा और उसका वर्णन भी किया -

"अलि मैं कण-कण को जान चली
सबका क्रन्दन पहचान चली
क्षण-क्षण का जीवन जान चली
मिटने को कर निर्माण चली।"15

महादेवी की प्रारंभिक रचनाओं में बाल सुलभ जिज्ञासाओं और कल्पना के तत्त्वों समन्वय हुआ है-

"आओ प्यारे तारों आओ
तुम्हें झुलाउँगी झूले में
तुम्हें सुलाउँगी फूलों में
तुम जुगनू से उड़कर आओ
मेरे आँगन को चमकाओ।"16

प्रकृति के साथ महादेवी का पूर्ण तदात्म्य होने के कारण वे फूल, पौधों में पशु-पक्षियों में अर्थात प्रकृति के कण-कण में वेदना के दर्शन करती हैं और अपने काव्य में उसका वर्णन करती हैं -

"रुपसि तेरा धन केश पाश
श्यामल-श्यामल कोमल-कोमल
लहराता सुरभित केश पाश
नभ-गंगा की रजत धार में
धो आई क्या इन्हें रात।"17

अपनी वेदना के वर्णन के लिए वे प्रकृति का आश्रय लेती हैं -

"प्रिय सान्ध गगन
मेरा जीवन।
यह क्षितिज बना धुधला विराग,
नव अरुण-अरुण मेरा सुहाग,
छाया सी काया बीत राग,
सुधि-भीने स्वप्न रंगीले घन।"18

वे अपने आप में प्रकृति का आरोपण करती हैं -

"मैं नीर भरी दुख की बदली
विस्तृत नभ का कोई कोना,
मेरा न कभी अपना होना,
परिचय इतना इतिहास यही
उमड़ी कल थी मिट आज चली।"19

कलियों, ओस की बुदों, कोयल की बोली आदि के माध्यम से महादेवी की वेदना कुछ इस तरह वर्णित हुई है -

"जग पतझर का नीरव रसाल,
पहने हिमजल की अश्रुमाल,
मैं पिक बन गाती डालडाल,
सुन फूट-फूट उठते पल पल,
सुख-दुःख मंजरियों के अंकुर।"20

"कलियाँ रोती हैं सौरभ भर,
निर्झर मानख आँसूमय कर,
उस क्षण के हित मत्त समीरण
करता शत-शत फेर।"21

"तुम अनन्त जलराशि उर्मि मैं
चंचल सी अवदात,
अनिल-निपीड़ित जा गिरती जो
फूलों पर अज्ञात।"22

"वृक्ष पर जिनके जल उडुगन
बुझा देते असंख्य जीवन,
कनक औ नीलम-यानों पर,
दौड़ते जिस पर निशि-वासर,
पिघल गिरि से विशाल बादल,
न कर सकते जिसको चंचल,

तडित् की ज्वाला घन-गर्जन,
जगा पाते न एक कंपन,
उसी नभ सा क्या वह अविकार
और परिवर्तन का आधार।"23

बौद्ध-दर्शन का प्रभाव

बौद्ध-दर्शन का आधार दुखवाद है जो निवृत्ति की ओर ले जाता है। 'पथ मेरा निर्वाण बन गया' और 'वेदना में जन्म करुणा में मिला आवास' जैसी पंक्तियाँ तथा दीपक को सर्वोपरि प्रतीक मानना, सारनाथ में जाकर बौद्ध धर्म की दीक्षा लेने का विचार अपने कक्ष में बुद्ध प्रतिमा रखना आदि ऐसे कारण हैं जिनके आधार पर बौद्ध धर्म के प्रति उनकी प्रवृत्ति सहज देखी जा सकती है। महादेवी बुद्ध के कारुणिक रुप से प्रेरित हुई और 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' का लोक मंगलकारी पक्ष ही उन्हें अभीष्ट रहा। 'महादेवी के काव्य में दुख और करुणा की प्रचुरता के जो अन्य कारण निर्दिष्ट किए जाते हैं। उनमें निजी जीवनानुभव, व्यक्तिगत रुचि, विषादग्रस्त सामाजिक परिवेश, बिहार के प्रारंभिक शिक्षा-संस्कार, गया आदि बौध केन्द्रों से परिचय, असफल दाम्पत्य आदि प्रमुख हैं। साहित्य एवं कला संदर्भ में शान्तिनिकेतन का सांस्कृतिक महत्त्व विशेषतः अजन्ता की बौध गुफाओं के कलात्मक वैभव से प्रेरणापरक परिचय, रवीन्द्र अवनीन्द्र का भारत व्यापी प्रभाव, बुद्ध - प्रेरित अहिंसा के प्रति गाँधीवादी दृष्टि, गुप्तजी द्वारा रचित 'यशोधरा' की रचनात्मक उपलब्धि, प्रसाद साहित्य में उनके स्थविर रुप को सार्थक करने वाली छवि और न जाने कितने ऐसे संदर्भ हैं जो इस सत्य को प्रमाणित करेंगें।'24

'महादेवी बुद्ध के उपदेशात्मक रुप से अथवा तार्किक रुप से प्रभावित नहीं हुई अपितु उनके कारुणिक रुप से प्रेरित हुई और उसीसे प्रेरणा ग्रहण की। बुद्ध को उन्होंने अपनी प्रेरणा का अंग मान लिया जिसके लिए बौध धर्म के सिद्धान्तों का अनुसरण

आवश्यक नहीं था। कवि दृष्टि एक स्वतंत्र दृष्टि होती है जो किसी भी वाद का अनुसरण नहीं करती फिर भी महादेवी के दुःखवाद की अनेक विशेषताएँ निर्दिष्ट की गई है।'25

बौद्ध दर्शन में संसार को दुःखों का ही रुप माना गया है। फूलों के साथ अगर कांटें भी हों तो वह सुख से कहीं अधिक दुःख की व्यंजना करते हैं। महादेवी वर्मा भी जीवन को दुखमय ही माना है। ऐसा इसलिए कि उनपर बौद्ध धर्म का प्रभाव कहीं-न-कहीं किसी न किसी रुप में अवश्य ही रहा है। वह कहती हैं -

"इस मीठी सी पीड़ा में
डूबा जीवन का प्याला
लिपटी सी उतराती है
केवल आँसू की माला।"26

"दुख से आविल सुख से पंकिल,
बुदबुद से स्वप्नों से फेनिल,
बहता है युग-युग अधीर।
प्रिय इन नयनों का अश्रु-नीर।"27

महादेवी की वेदनानुभूति इतनी सघन है कि उनके काव्य को पढ़कर दुख और वेदना के सिवा और कुछ सुझता ही नहीं। उनका दुखवाद बौद्ध दर्शन से ही प्रभावित लगने लगता है। ये पंक्तियाँ दृष्टव्य है -

"मैं भी भर झीने जीवन में
इच्छाओं के रुदन अपार,
जला वेदनाओं के दीपक
आयी उस मंदिर के द्वार।"28

और फिर उनका यह कहना 'विरह का जलजात जीवन' बौद्ध दर्शनवाद की पुष्टि करता है -

"विरह का जलजात जीवन विरह का जलजात।
वेदना में जन्म करुणा में मिला आवास,
अश्रु चुनता दिवस इसका, अश्रु गिनती रात।
जीवन का विरह का जलजात।"29

"वाल्मीकि की करुणा जैसे क्रौंच-वध से उपजी वैसे ही महदेवी के भीतर हिरनों को मारने वाले व्याध के अपकर्म से उपजती दिखाई देती है। वे कला को मृत्यु मुखी नहीं मानती- कला कहीं मृत्यु का कारण होती है। तेरे इस करतब को देखकर यमराज भी लज्जित हो गये। यथा -

'होत कला कहुँ मृत्यु मुखी, सुनिके करतब जमराज लजाये।'

व्याध को ही वे विश्वासघाती मानती हैं क्योंकि वही सृष्टि-व्यापी आत्मीयता में परायेपन का विष घोलता है। साहित्य की मूल मान्यता का खण्डन करता है। इसलिए महादेवी के आँसू कभी नहीं रुके। टचितवन में विसमय इनके बड़री अँखियन से आँसू ढ़रे हैं।'30

जयशंकर प्रसाद की वेदनानुभूति और निराला की वेदनानुभूति

हिन्दी काव्य के क्षेत्र में जयशंकर प्रसाद और निराला ने एक साथ प्रवेश किया। 'प्रसाद गूढ़ थे और निराला उदग्र। इसलिए प्रसाद में विद्रोह और क्रान्ति उस तरह उपर उठी हुई नहीं है जैसी निराला में। प्रसाद लगातार गहरे उतरते चले गये और निराला खुलते और विखरते गये। निश्चय ही दोनों समुद्र थे, परंतु प्रसाद रामेश्वरम् के शान्त समुद्र

और निराला कन्याकुमारी के उन्मद समुद्र। प्रसाद के भीतर उतरने पर गहराई का आभास होता है और निराला खुले में अपना उत्ताल स्पर्श और उन्मद व्यग्रता से प्रभावित करते हैं। निराला में प्रतिभा का विस्फोट है, जबकि प्रसाद की प्रतिभा धीमी आँच पर पकती रही। वे समस्याओं के आवे से गुजरकर मनुष्यता के किसी साम्यमूलक महान उत्कर्ष की प्रतीक्षा में थे। निराला के राम शट्चक्रभेदन करते हुए सहार पर इसलिए पहुँचते हैं कि उन्हें अपने भीतर के संघर्ष को साधना है -- 'आराधना का दृढ़ आराधना से उत्तर' देना है, जबकि प्रसाद के मनु हिमालय के शीर्ष पर बैठकर भी सबको अपने रुप में देखते और समभाव का निर्देश देते हुए अपनी अकांक्षाओं के उपर उठ चुके हैं।'31

प्रसाद वेदना को एक शाश्वत चेतना के रुप में ग्रहण करते हैं। बौद्ध दर्शन के दुखवाद का संकेत लहर के गीतों में मिलता है। 'आँसु' की प्रारंभिक पंक्तियों का भावावेश वेदना दर्शन में बौद्धिकता को अपना लेता है और इस तरह वेदना व्यष्टि से समिष्टि पर पहुँचती है। 'आँसु' केवल कवि की आत्माभिव्यक्ति न होकर व्यापक दर्शन में परिवर्तित होता है। अब तक जो वेदन-ज्वाला प्रणयी के अन्तर में जलती हुई देख रहा था वह ज्वाला कण-कण में व्याप्त हो जाती है। प्रसाद का वेदना दर्शन गीतिकाव्य को शक्ति देता है। प्रेमी आरंभ में रुदन करता है। उसे बीते हुए क्षण बार-बार याद आते हैं, और वह प्रेयसी के रुप पर रीझ उठता है। अन्त में वह वेदना से सन्धि करता है। प्रसाद के साहित्य में प्राप्त वेदना की छाया उसे अस्वस्थ नहीं बनाती। 'स्कन्दगुप्त' आन्तरिक पीड़ा लेकर भी अपने उद्देश्य स्थापन में सफल होता है। वेदना को प्रसाद नियति से सम्बन्धित करते है। यह एक अदृश्य शक्ति है जो मानव की गतिविधि का संचालन करती है।

निराला और प्रसाद दोनों ही छायावादी कवियों में वेदना की टीस विद्यमान है। 'छायावादी युग में निराला और जयशंकर प्रसाद को भी बहुत कुछ भवभूति जैसा संताप झेलना पड़ा। निराला ने तो 'सरोज स्मृति, और अन्यत्र खुलकर अपनी वेदना और असंतोष को प्रकट कर दिया, परंतु प्रसाद सारी अवहेलना और आरोप चुपचाप पीते रहे। स्वयं निराला ने उनके बारे में लिखा है -

"रहित बुद्धि से लोग असंयत हुए अनर्गल
किन्तु नहीं तुम हिले, तुम्हारे उमड़े बादल।"

वेदना अवश्य उन्हें टीसती रही होगी, परंतु कभी उन्होंने उसे उघाडकर नहीं दिखाया, न अहंकार प्रदर्शित किया, न याचना की और न प्रतिवाद किया। वे गंभीर विद्वता और विचारशील सर्जक चेतना से अपनी मौलिक स्थापनाएँ रखते रहे।'32

आलोचनाओं और समालोचनाओं की जितनी वेदना निराला को झेलनी पड़ी प्रसाद को भी उतनी ही वेदना झेलनी पड़ी। प्रसाद साहित्य की यह कहकर आलोचना की जाती रही कि वे गड़े मुर्दे उखाड़ते हैं। प्रेमचन्द का मत था कि - 'प्रसाद को ऐसे साहित्य की रचना की जानी चाहिए जो समकालीन संदर्भ में समाज का कुछ भला कर सके। तो क्या प्रसाद जी जो कुछ लिखते थे उसमें उस समय के समाज का कुछ भी लेना देना न था? आज परिदृश्य बदल चुका है प्रसाद कालजयी स्रष्टा माने जा रहे है। विचारणीय बात यह है कि कालजयी साहित्य वह होता है जो अपने समय में अत्यन्त महत्वपूर्ण और प्रासंगिक रहा हो। ऐसा होने के वावजुद भी प्रसाद की आलोचना हुई जो उनकी वेदना का कारण बनी।'33

प्रसाद यथार्थ का मूल वेदना को मानते थे, क्योंकि वेदना से अनुप्रेरित होकर ही साहित्य जनसाधारण के आभाव और उसकी वास्तविक स्थिति तक पहुँचने का प्रयास करता है। प्रसाद की दृष्टि में समाज की उन्नति साहित्य की उन्नति पर निर्भर होती है, वे साहित्य की उन्नति को समाज तक ही सीमित नहीं करते बल्कि वे उसे विश्व मंगल की भावना से ओत-प्रोत मानते थे - "साहित्य समय की वास्तविक स्थिति क्या है, इसको दिखाते हुए भी उसमें आदर्शवाद का सामंजस्य स्थिर करता है। दुख दग्ध जगत् और आनन्दपूर्ण स्वर्ग का एकीकरण साहित्य है, इसलिए असत्य अघटित घटना पर कल्पना को वाणी महत्वपूर्ण स्थान देती है, जो निजी सौन्दर्य के कारण सत्य-पद पर प्रतिष्ठित होती है। उसमें विश्व मंगल की भावना ओत प्रोत रहती है।"34

(ख) *अद्वैतवाद का प्रभाव*

उपनिषद का अद्वैतवाद शैव दर्शन में आ कर अधिक सरस हो गया। उसकी समरसता में भक्ति भावना का भी समन्वय हुआ। समरसता का प्रतिपादन करने वाला शैव दर्शन सुख-दुख, पाप-पुण्य में कोई मौलिक अन्तर नहीं मानता। शैव-दर्शन की समरसता में अद्वैत-भावना का सरस प्रतिपादन हुआ है। प्रसाद जी शैव-दर्शन से प्रभावित हैं और उनकी कामायनी की समरसता तो शैव-दर्शन से भी अधिक व्यवहारिक है। उसमें केवल धार्मिक, अध्यात्मिक अथवा दार्शनिक पक्ष का ही ग्रहण नहीं, अपितु वह जीवन की कुछ समस्यायों का समाहार कर लेती है। प्रसाद की समरसता अथवा अद्वैतवाद उनके नाटक 'एक घूँट' में भी देखी जा सकती है। इस समरसता का आधार 'कामायनी' के 'श्रद्धा' सर्ग में परिलक्षित हुआ है। समरसता प्रसाद साहित्य का मूल स्वर है। 'कामायनी' का अन्त इसी समरसता की प्रतिष्ठा से होता है-

"समरस थे जड़ या चेतन
सुन्दर साकार बना था।"35

प्रसाद की दार्शनिकता उनकी 'कामायनी' महाकाव्य में स्पष्ट देखी जा सकती है। जहाँ उन्होंने चिंता, आशा, श्रद्धा, काम बासना आदि सर्गों में मानवीय मनोवृत्तियों का निरुपण किया हैं। इसमें श्रद्धा विश्वास इड़ा बुद्धि और मनु मन का प्रतीक है। इस प्रकार कवि ने दार्शनिक रुप में यह निष्कर्ष निकाला कि बुद्धि और विश्वास की समन्वित प्रक्रिया से मानव विकास के मार्ग पर अग्रसर हो सकता है। प्रसाद के काव्य में प्रेम, रहस्यात्मकता के साथ-साथ जीवात्मा और परमात्मा सम्बन्धी विचार भी देखने को मिलते हैं -

"समर्पण लो सेवा का सार,
सजल संसृति का यह पतवार,

आज से यह जीवन उत्सर्ग
इसी पदतल में विगत-विकार।
दया, माया, ममता लो आज
मधुरिमा लो, अगाध विश्वास,
हमारा हृदय-रत्न निधिस्वच्छ
तुम्हारे लिए खुला है बात।।"36

प्रसाद का प्रेम उच्च आदर्शों से पूर्ण होने के कारण वह उनके प्रेम को दार्शनिक अलौकिकता प्रदान करता है। प्रकृति और पुरुष के सम्बन्ध को लेकर प्रत्येक दार्शनिक के मन में जिज्ञासा रहती है। प्रसाद की भी है -

"महानील इस परम ब्योम में, अन्तरिक्ष में ज्योतिर्मान।
ग्रहनक्षत्र और विद्युतकण, किसका करते हैं संधान।
छिप जाते हैं और निकलतें, आकर्षण में खिचें हुए।
तृण बिरुथ लहलहे हो रहे, किसके रस से सिंचे हुए।"37

जयशंकर प्रसाद शैव-दर्शन से प्रभावित हैं जिसके अनुसार जीवात्मा को तब तक विश्राम नहीं मिल सकता जब तक वह आनन्दधाम में नहीं पहुँच जाता। इसके लिए मानव जीवन में दुख के मूल कारण विषमता पर विजय प्राप्त करके उसे समरसता तक पहुँचाना अनिवार्य है। इस दशा को तभी प्राप्त किया जा सकता है जब ज्ञान, इच्छा और कर्म में सामंजस्य स्थापित कर लिया जाय। बिड़म्बना तो तब होती है जब इनका समन्वय नहीं हो पाता है -

"ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है,
इच्छा क्यों हो पूरी मन की।
एक दूसरे से न मिल सकें,

यह विड़म्बना है जीवन की।"38

जीवात्मा की अनित्यता पर कवि कहते हैं -

"देव न थे हम और न ये हैं,
सब परिवर्तन के पुतले,
हाँ कि गर्व-रथ में तरंग सा
जितना जो चाहे जुत ले।"39

हिन्दी साहित्यिक परम्परा में अद्वैतवाद भक्तिकाल से विद्यमान है। रामभक्ति शाखा के प्रमुख कवि तुलसीदास ने जीव को ईश्वर का अंश मानकर उसे चेतन, अमर और अविनाशी बताया है -

"ईश्वर अंशजीव अविनासी।
चेतन अमल सहज सुखरासी।
सो माया बस भेयउ गोसाई।
बंध्यो कीर मरकट की नाई।"40

यही अद्वैतवाद कबीर आदि संत कवियों में भी है। कबीर को अद्वैत की जो अनुभूति हुई उसे उन्होंनें अपने काव्य का विषय बनाया -

"आत्मा राम अवर नहीं दूजा।
तू माया रघुनाथ की खेलन चली अहेड़ै।"41

प्रसाद का काव्य भी इसी अद्वैत की अनुभूति से प्रेरित है। प्रसाद के काव्य में इसी अद्वैत की अभिव्यक्ति देखने को मिलती है।

एक वैभवपूर्ण और प्रतिष्ठित साहु परिवार में जयशंकर प्रसाद का जन्म हुआ था। प्रसाद के पुर्वज शैव थे और प्रसाद भी इसी कारण शिव भक्ति में लीन रहने लगे। यही शिव भक्त आगे चलकर शैव दर्शन से प्रभावित हुआ। प्रसाद जब बारह वर्ष के थे तो उनके पिता का देहान्त हो गया। घर का भार उनके बड़े भाई शम्भूरतन पर आ पड़ा, शम्भूरतन स्वतन्त्र इच्छा के निर्भिक व्यक्ति थे और व्यापार में अधिक ध्यान न रहता था धीरे-धीरे व्यवसाय को हानि पहुँचने लगी। अब प्रसाद जी का परिवार एक वैभवशाली परिवार न रह गया था। संघर्षों के बीच भी प्रसाद का अध्ययन चलता रहा। इस बीच उन्होंने ब्रजभाषा में रचना आरंभ कर दिया था। प्रसाद की माता की मृत्यु के दो वर्षों के पश्चात उनके भाई का भी देहान्त हो गया। अब प्रसाद के चारों ओर विषमताएँ खेल रही थी लोग उनकी अल्पावस्था को जानकर ठगना चाहते थे, पर प्रसाद के हाथों में यश था। उन्हें स्वयं अपना बिबाह करना पड़ा। इसके अनन्तर उनके दो और विवाह हुए।

अपनी प्रथम रचना उन्होंने नौ वर्ष की अवस्था में की थी, जिसमें रीतिकालीन परिपाटी का प्रभाव था जो बाद में समाप्त हो गया। अधिकांश कवियों की तरह प्रसाद की भी आलोचना हुई, इन आलोचनाओं के कारण प्रसाद को अपने काव्य की व्याख्या स्वंय करनी पड़ी। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी आरंभ में छायावाद का विरोध किया और उसे अभिव्यंजना की एक शैली मात्र कह कर टाल देने का प्रयास किया। लोग अपनी मनमानी हाँकने लगे। प्रसाद ने सभी आलोचनाओं का उत्तर अपने गतिमान साहित्य से दिया।

'जहाँ तक सृजनशील साहित्य का प्रश्न है, स्थूल प्रत्यक्ष की सत्ता उसके लिए बहुत तात्त्विक नहीं होती, वहाँ घटना, स्थिति, पात्र सब प्रतीक हैं। यह बात श्रेष्ठ यथार्थवादी साहित्य से लगाकर हर प्रकार के साहित्य के बारे में कही जा सकती है। क्योंकि साधरणीकरण और सामान्यीकरण का मूल सिद्धांत ही यह है कि वहाँ सब कुछ, भाव, विचार या प्रेरणा में बदलकर अपनी निजी सत्ता का विलयन कर देता है। इसलिए साहित्य अनुभूति के स्तर पर पदार्थ या व्यक्ति-संज्ञा न होकर प्रतीक-संज्ञा होती है। फूल

जब कोमलता को ध्वनित करता है तो अनुभूति मूल में कोमलता ही होती है, फूल नही बल्कि फूल का विलयन अंततः कोमलता में हो जाता है। अर्थात सर्जना के सारे उपादान अनुभूति और प्रज्ञा के लिए एक आहुति होते हैं। यही चीज तो है जो इतिहास को आदिम छोर से उठाकर आज के धरातल पर रख देती है। इसी ने तो 'कामायनी' जैसी मनुष्य की प्रारंम्भ-कथा को मानवता के द्वंद्वात्मक विकास और उसकी साम्यमूलक परिणति का महाकाव्य बना दिया। 'कामायनी' में व्यक्त भौतिक विलास और बौद्धिक अतिवाद की त्रासद परिणतियाँ आज भी हमारी चिन्ता के केन्द्र में हैं। मानव और इड़ा को शासक बनकर भीति न फैलाने का निर्देश क्या किसी भी शासन तन्त्र के लिए निर्देश नहीं है क्या उसके समता सिद्धांत को वर्तमान समाज में भी लागू नहीं होना चाहिए जहाँ वर्ग, वर्ण, लिंग आदि के भेद बने हुए हैं। क्या आज कोई यह मान सकेगा कि मानवीय विषमता को समाप्त करने की प्रेरणा देना मनुष्य को आदिम युग में लौट जाने की प्रेरणा देना है।'42

निराला की वेदना की अनुभूति और उसकी अभिव्यक्ति

निजी जीवन के दुख के साथ साहित्य जगत में मिली अवमानना भी निराला के जीवन में कम न थी। उनकी रचनाएँ उस समय की बहुचर्चित पत्रिकाओं में बिना छपे वापस आ जाती थी। निराला आर्थिक रूप से हमेशा असहाय रहे। यही कारण है कि निराला में औदात्य और तटस्थता मिलती है वह अन्य कवियों में दुर्लभ है। 'सरोज स्मृति' केवल एक आत्मकथा ही नहीं है बल्कि उसके माध्यम से एक-एक पुरानी रूढ़ियों और आधुनिक अर्थ पिशाचों पर करारा प्रहार है। 'सरोज स्मृति' पंत के 'उच्छ्वास' और प्रसाद के 'आँसू' की वैयक्तिकता से कहीं अधिक आगे है। कवि की महानता वैयक्तिक अनुभवों की प्रस्तुति में नहीं बल्कि उनसे तटस्थ और निर्वैक्तिक होने में है। पंत की तुलना में उनका काव्य अधिक वस्तुमूखी है। निराला कविता को स्वच्छन्दता का पर्याय मानते थे- "कविता पराधीन नहीं स्वाधीन है। वह एक संकीर्ण सीमा में विहार करने वाली नहीं, अन्त और असीम ब्रम्हांड उसका क्रीड़-स्थल है।"43 इसलिए निराला के यहाँ वैक्तिकता भी विराट

की भावना में तिरोहित है जाती है, क्योंकि जिस कविता में विराट की भावना नहीं होती वह एकदेशीय और संकीर्ण होती है। व्यक्तिगत दुख और निजी जीवन से मिली अनुभव और अनुभूति को जब काव्य का विषय बनाया जाये तो पहले यह स्पष्ट हो कि समाज और राष्ट्र के हित में उसमें विराट की भावना निहित हो। कबीर का काव्य भी इसी अनुभव की भूमि पर निर्मित है और उसमें समाज सुधार की भावना भी है।

निराला की कविता 'राम की शक्तिपूजा' को देखें राम हताश और निराश बैठे है। उनकी सारी सेना निराश है, उन्हें कोई युक्ति नहीं सूझती -

" है अमानिशा, उगलता गगन घन अंधकार
खो रहा दिशा का ज्ञान, स्तब्ध है पवन चार,
अप्रतिहत गरज रहा पीछे अम्बुधि विशाल
भूधर ज्यों ध्यान मग्न, केवल जलती मशाल।"44

यहाँ ध्यान देने से भारत की स्वाधीनता संग्राम का संकेत परिलक्षित होता है। जिस समय पूरे देश की दृष्टि गाँधी जी पर केन्द्रित हो गई थी और गाँधी जी को कुछ नहीं सूझ रहा था। निराला राम के माध्यम से स्वाधीनता संग्राम की इसी स्थिति को पकड़ने का प्रयास करते हैं। ऐसे ध्यान देने पर यह कविता उनके निजी जीवन की असफलताओं को प्रदर्शित करती हुई ही दिखाई देती है किन्तु सांकेतिक अर्थ में भारत की स्वाधीनता को स्पष्ट कर देना ही निराला के काव्य की विराटता है। राम निराश हैं कि उन्हें जीवन भर विरोध ही मिला -

"धिक जीवन को जो पाता ही आया विरोध
धिक साधन जिसके लिए सदा ही किया शोध
जानकी हाय उद्धार प्रिया का न हो सका।"45

प्रिया का उद्धार न हो सकने का तात्पर्य **सीता मुक्ति** के बहाने **भारत मुक्ति** से है। और गहराई में जाये तो **नारी मुक्ति** का भी अर्थ इसमें संश्लिष्ट है। गाँधी जी को इस बात की पीड़ा थी की वे भारत को मुक्त नही करा पा रहे थे, इसके साथ-साथ इस बात की और भी गहरी पीड़ा थी की समाज में नारी की स्वतंत्रता का हनन पुरुष समाज द्वारा हुआ है। समाज की वास्तविक उन्नति के लिए नारी स्वायत्तता आवश्यक है।

निराला की एकमात्र पुत्री **सरोज** के असमय निधन से उनके जीवन का एकमात्र सहारा भी छिन गया किन्तु अपने जीवन में निराला ने इतने दुख झेले थे कि इस बज्रपात को भी वे झेल गये। फिर भी पुत्री के निधन का दुख असह्य होता ही है और तब जब कि उनकी आर्थिक असमर्थता सरोज के निधन का कारण बनी हो वैसे में वह और भी असहनीय हो जाता है। जीवन में स्वार्थ समर हमेशा हारते रहे धन प्राप्ति के गलत तरिके उन्होंने कभी नहीं अपनाए। यद्यपि धन उपार्जन के बहुत सारे तरीके उन्हें ज्ञात थे। निराला को सरोज के निधन की पीड़ा हमेशा सालती रही -

"धन्ये मैं पिता निरर्थक था,
कुछ भी तेरे हित कर न सका
जाना तो अर्थागमोपाय
पर रहा सदा संकुचित काय
लखकर अनर्थ आर्थिक पथ पर
हारता रहा मैं स्वार्थ समर।"46

सुख और दुख का गहरा सम्बन्ध होता है। यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि दुखद क्षणों में हम जीवन की सुखद अनुभूतियों को याद करते है। 'राम की शक्तिपूजा' में निराला के राम युद्ध में पराजित होते हैं और जब चारों ओर अंधकार नजर आने लगता है जब उन्हें अपने जीवन का सबसे सुखद क्षण याद आता है जब वे सीता से पहली बार मिले थे -

"ऐसे क्षण अंधकार घन में जैसे विद्युत
जागी पृथ्वी - तनया - कुमारिका - छवि, अच्युत
देखते हुए निष्पलक, याद आया उपवन।"47

'राम की शक्तिपूजा' एक ऐतिहासिक रचना है। जिसमें राम की वेदना में कवि को अपनी निजी वेदना का समन्वय हुआ सा प्रतीत होता है। कल्पना की नूतन शैली में कवि ने इसे मौलिक रुप में प्रस्तुत किया है। इसमें मुख्यतः राम रावण के युद्ध, राम का पराजय, युद्ध की भीषणता, सीता विषयक राम की पूर्व कालीन स्मृति, राम की ग्लानी और हताशा, महाशक्ति की पूजा, देवी का राम के लिए वरदान आदि प्रसंगों का मार्मिक चित्रण हुआ है। लेकिन कविता में राम और उनका अन्तः संघर्ष ही अभिव्यक्त हुआ है। युद्ध में पराजय, गहरा अवसाद यह सब निराला के निजी जीवन के ही भोगे हुए हैं। स्पष्ट है कि कविता का प्रतिपाद्य निराला के अपने निजी जीवन से काफी हद तक जुड़ा हुआ है। कवि परिस्थितियों से संघर्ष करता है किन्तु उससे हार नहीं मानता। ठीक वैसे ही जैसे 'राम की शक्तिपूजा' के राम युद्ध में संघर्ष करते हैं और अंततः शक्ति की साहायता से विजयी होते हैं। निराला की यह आशावादिता उनके अपने जीवन को लेकर भी है ऐसा प्रतीत होता है।

निराला जीवन भर संघर्ष करते रहे। आभाव, विपन्नता, दुख, विषाद, सामाजिक रुढ़ियों, प्रथाओं से आजीवन जूझते रहे। मगर दृढ़ निराला ने कभी हार नहीं मानी परिस्थितियों के सामने झुके नहीं। एक साधक की भाँति गीतों की रचना करते रहे। परंतु हिन्दी साहित्य जगत वालों ने उन्हें प्रेम और सम्मान के स्थान पर उत्पीड़न और लांछन दिया। इसी से व्यथित कवि कहने पर मजबुर हो उठता है -

"विफल हुई साधना देह की
असफल आराधना स्नेह की
बिना दीप की रात गेह की

उल्टे फल कर फूल गये हो
नहीं ज्ञात उत्पात हुआ क्यों,
ऐसा निष्ठुर घात हुआ क्यों,.
विमल-गात अस्नात हुआ क्यों
बढ़ने को प्रतिकूल गये ही?"48

यहाँ कवि के मन की आन्तरिक स्थिति और उसकी पीड़ित हृदय की छटपटाहट उभर कर आई है। कवि अंत में निराश और हताश होकर कहता है -

"हार गया जीवन रण,
छोड़ गये साथी-जन,
एकाकी, नैश-क्षण,
कण्टक-पथ, विगत पाथ"49

जागरुक कवि को ज्ञात है कि उसे अपनी मंजिल तक पहुँचने के लिए अनेक प्रहार और कठिनाईयों का सामना करना पड़ेगा। हिन्दी वालों को निराला का सही परिचय नहीं है अर्थात वे निराला की विद्वता से ठीक से वाकिफ नहीं इसका उन्हें दुख भी है। निराला लिखते हैं -

"चोट खाकर राह चलते
होश के भी होश छूटे
हाथ जो पाथेय थे, ठग-
ठाकुरों ने रात लूटे
कण्ठ रुकता जा रहा है,
आ रहा है काल, देखो।

मर गया है जहर से
संसार जैसे हार खाकर,
देखते हैं लोग लोगो को
सही परिचय न पाकर
बुझ गई है लौ पृथा की
जल उठो फिर सींचने को।"50

जीवन में मिले संघर्ष को कवि अब निराशक्त होकर देखता है और व्यापक लोक कल्याण की इच्छा प्रकट करता है। लगातार संघर्षों से जुझते हुए कवि थक हार कर चूर-चूर हो जाता है और इसी कारण वह भवसागर से मुक्ति के लिए ईश्वर से प्रार्थना करता है -

"पतित हुआ हूँ भव से तार
दुस्तर दव से कर उद्धार।"51

निराला की आरंभिक रचनाओं में जो विद्रोह, निर्भयता, तेजस्विता थी वह अर्चना तक आते-आते काफी शिथिल हो जाती है। अब कवि का आत्मविश्वास गहन अंधकार पथ में लीन होता दिखाई देने लगता है। संघर्षरत और थका हारा कवि ईश्वर आराधना की ओर आकर्षित होता है।

अद्वैत दर्शन का प्रभाव

अदृश्य ईश्वर एवं विश्व के स्वरुप की भावना से भारतीय धार्मिकता एवं योरोपिय भौतिकता को आधार बना कर सामन्तों और मठाधीशों ने अपने कार्य रुप को परिवर्तित किया। शंकराचार्य ने अपना चिंतन प्रस्तुत करके ईश्वर को ही सर्वश्रेष्ठ बताया। निराला भी शंकराचार्य के अनुयायी बने। डॉ. रामविलास के शब्दों में - 'निराला के मन में ज्ञान के

प्रति, शंकराचार्य के प्रति परम आस्था थी। उनका देशप्रेम उन्हें वेदांत ज्ञान पर, शंकराचार्य पर गर्व करना सिखाता था। साथ ही अपने सामाजिक परिवेश, पारिवारिक किसान संस्कारों और अपने जीवन संघर्ष से उन्हें क्रांतिकारी चिन्तन की प्रेरणा मिल रही थी। देशप्रेम की भावना उन्हें सिखाती थी कि पुरानी जर्जर समाज व्यवस्था को मिटा दिया जाये। इस देश को आधुनिक शक्ति सम्पन्न राष्ट्र बनाया जाये जिससे अन्य समुन्नत देशों की तरह साहित्य और विज्ञान का विस्तार हो।'52

निराला की कविताओं में भक्ति एवं दर्शन आरंभ से अंत तक देखने को मिलता है, किन्तु प्रथम चरण में भक्ति की तुलना में दर्शन की उपस्थिति अधिक दृष्टिगत होती है। स्वामी विवेकानन्द द्वारा प्रतिपादित नवोदित वेदांत में अन्तर्निहित अद्वैत दर्शन का प्रभुत्व निराला के काव्य में छाया हुआ है।

"निराला के काव्य में दार्शनिकता पुरे काव्यात्मक सौन्दर्य के साथ अभिव्यक्त हुई है। उपनिषदों के आधार पर ईश्वर के बारे में विशेष विचार दर्शन ग्रन्थों में किया गया है। छह ऋषियों ने छह दर्शनों की रचना की है जो षट् - दर्शन के नाम से जाने जाते हैं। कपिल मुनि का सांख्य-दर्शन, पतंजलि का योगदर्शन, गौतम ऋषि का व्यास दर्शन, कणाद नुनि का वैशषिक दर्शन, जैमिनी का मीमांसा दर्शन, व्यास मुनि का वेदांत दर्शन, परवर्ती संस्कृत और हिन्दी साहित्य में इन दर्शनों का प्रभाव माना जाता है।"53 वेदों में ब्रम्ह, आत्मा, परमात्मा, जीव-जगत, माया, प्रकृति आदि पर विस्तार से विचार किया गया है। निराला के काव्य में इन तत्त्वों का गहन चिन्तन मनन हुआ है। अगर इस दृष्टि से देखा जाये तो निराला अपने समकालीन कवियों से अलग ही निराले रुप में दिखाई देते हैं। अपने नाम के अनुरुप ही निराला अपने दार्शनिक चिंतन में निराले हैं। वेदों में ब्रम्ह की विवेचना कुछ इस तरह की गई है - "इच्छाशून्य, धीर, अमृत, स्वयंभू, रस से तृप्त, सर्वव्यापक तथा अनन्तशक्ति सम्पन्न किया गया है।"54 निराला अपनी कविता में उस ब्रम्ह को इस प्रकार स्वीकार करते हैं -

'निःस्पृह, निःस्वर्म, निरामय निर्गम,
निराकाङ्क्ष, निर्लेप, निरुद्म,
निर्भय, निराकार, निःसम, शम,'55

उपरोक्त विवेचन से इतना तो स्पष्ट हो ही गया है कि निराला अद्वैतवादी हैं। उनका ब्रम्ह में विश्वास है और उनका मानना है कि ब्रम्ह एक है वह सर्वव्यापी है। जैसा उन्होंने कहा है -

'जिस प्रकाश के बल से
सौर ब्रम्हांणड को उद्भासमान देखते हो
उससे नहीं वंचित है एक भी मनुष्य भाई,
व्यष्टि औ समष्टि में समाया वही एक रुप,
चिद्घन आनन्द-कन्द।'56

'निराला अपने काव्य में ब्रम्ह को सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान सत्ता प्रकाश स्वरुप आनंद को स्वीकार करते हैं। वे ब्रम्ह को विविध रुपों और नामों से सम्बोधित करते हैं। वे कहीं अनंत, कहीं श्याम, कहीं अतीत और कहीं असीम कहकर पुकारते हैं। कहीं उसे माँ रुप में देखा है और कहीं जननी और देवी रुप में। नारी रुप में कवि उसे किरणमयी, ज्योतिर्मयी, सुन्दरी और आमवासिनी, कहकर पुकारता है। कभी उस सत्ता को प्रिय, परम प्रिय, प्रेम प्रकाश, चिर-प्रियदर्शन, आदि सम्बोधनों से सम्बोधित करता है।'57 निराला के जीवन में रामकृष्ण परमहंस का प्रभाव है और परमहंस काली को ही ब्रम्ह मानते हैं। निराला ने अपनी अनेक कविताओं में ब्रम्ह के इसी स्वरुप को चित्रित किया है -

'जिनके कटाक्ष में करोड़ों शिव विष्णु अज
कोटि-कोटि सूर्य-चन्द्र-तारा-ग्रह
कोटि इन्द्र-सुरासुर-

जड़ चेतन मिले हुए जीव-जग
बनते-पलते है, नष्ट होते है, अंत में
सारे ब्रम्हांण्ड के मूल में जो विराजती हैं
आदि-शक्ति रुपिणी,
शक्ति से, जिनकी शक्तिशालियों में सत्ता है-
माता हैं मेरी वे।'58

'निराला हिन्दी साहित्य के सुप्रसिद्ध दार्शनिक कवि हैं। उनके काव्य में दर्शन और दर्शन में काव्य है।'59 निराला की अनेक रचनाओं में दर्शन की स्थिति दिखाई देती है। इतना तो पहले ही स्पष्ट हो चुका है कि उनके काव्य में या उनके दार्शनिक विचारों में स्वामी रामकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानन्द का प्रभाव रहा है। 'कवि निराला ने स्वतंत्र रुप से उपनिषदों तथा वेदांत दर्शन का चिंतन किया , तथापि शंकर के अद्वैत-दर्शन अथवा अद्वैतवाद को उन्होंने रामकृष्ण मिशन के माध्यम से ही ग्रहण किया। अतएव उनके काव्य में अद्वैत दर्शन के तत्वों के साथ मानवतावाद की भावना भी व्याप्त है।'60 निराला में दार्शनिक तथ्य और मानवतावादी दष्टिकोंण दोनों का सामांजस्य है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी लिखते हैं - 'यदि केवल एक वाक्य में निराला के काव्य की व्याख्या करनी हो तो हम इस तरह करेंगें कि निराला जी हिन्दी काव्य के प्रथम दार्शनिक कवि और सचेत कलाकार हैं।'61

निराला के दार्शनिक विचारों में अन्य छायावादी कवियों की तरह ही जिज्ञासा की भावना है। कवि प्रकृति और प्रकृति के कण-कण को देखकर उसे जानने और समझने के लिए उत्सुक होता है। इस विश्व के मूल में कौन सी शक्ति है? वह कौन है जिसकी प्रेरणा से यह विश्व गतिमान है? विश्व और अखिल सृष्टि की रचना का कारण क्या है? निराला सर्वत्र एक ही शक्ति के दर्शन करते हैं, किन्तु इस एक में भी अनेक का आभास होता है। यह पूरी सृष्टि परमेश्वर के कार्य है या परमेश्वर ही इस पूरी सृष्टि में है। इस सम्बन्ध में

कवि की कोई निश्चित राय नहीं बन पाती। वे इस प्रश्न को सुलझाने के लिए अत्यंत उत्सुक हैं -

तुम हो अखिल विश्व में
या यह अखिल विश्व है तुममे
अखिल विश्व तुम एक
यद्यपि देख रही हूँ तुममे भेद अनेक,
बिन्दु । विश्व के तुम कारण हो
या यह विश्व तुम्हारा कारण?
कार्य पंचभूतात्मक तुम हो
या कि तुम्हारे कार्य भूत?62

निराला के मानस पर दार्शनिकता का प्रभाव इस तरह पड़ा कि वे रामचरित मानस, का सस्वर पाठ करते समय अपने आप में इस तरह खो जाते थे कि उन्हें अपने आप में कभी महावीर तो कभी मनोहरा देवी दिखाई देती थी। डॉ. रामविलास के शब्दों में "अपने ही स्वर पर मुग्ध सूर्यकुमार को कभी स्वामी जी दिखाई देते, कभी मनोहरा देवी।"63 निराला ने हिन्दी मनोहरा देवी की प्रेरणा से ही सीखी थी और मनोहरा देवी घर में रामचरित मानस का पाठ करती थी। स्पष्ट है कि घर के संस्कार ही निराला को आध्यात्मिक रुझान की ओर प्रेरित करते थे। मनोहरा देवी की असामयिक मृत्यु से वे व्यथित, पीड़ित चिंतन, मनन करने लगे। गीतिका की भूमिका में निराला जी स्वयं स्वीकार करते हैं कि उन्हें कवि का हृदय और दार्शनिक मस्तिष्क मिला है। इसलिए जहाँ एक ओर उनके काव्य में तीव्र आक्रोश है वहीं दूसरी ओर चिंतनजन्य गहन दार्शनिक ज्ञान का भी पुट विद्यमान है। ''निराला का काव्य मूलतः बुद्धिवादी है और बौद्धिक चिंतन क्रमशः भावना के धरातल पर उतरता गया है, और दार्शनिकता अन्ततः आध्यात्मिक भक्ति के दारुण दन्य में पर्यवसित हो गई है।"64 निराला की इसी दार्शनिकता के सम्बन्ध में रामअवध शास्त्री

का मत है- "निराला के दार्शनिक चिंतन का आधार रामकृष्ण मिशन की अद्वैतवादी साधना है जिस पर उपनिषदों की गहरी छाप है।"65 यहाँ हम देखते हैं कि कवि ने अद्वैतवादी तत्त्वों को सुलझाने का प्रयास किया है। राम अवध शास्त्री आगे लिखते है - "अपने दार्शनिक चिंतन में वे आत्मा परमात्मा, जीव, जगत, माया आदि की गुत्थियों को सुलझाने की चेष्टा की है।"66

''माया मरीचिका की छलना, मृगतृष्णा का भटकाव और दुःखमय संसार का हाहाकार इन सबकी प्रतिक्रिया स्वरुप उपजी करुणा निराला की एक मात्र पूँजी भी, किन्तु नियति नटीका क्रीड़ा कंदुक बनकर संसार के असारतत्व से परिचित होकर स्वामी रामकृष्ण के प्रभाव से विवेकानन्द के चिंतन क्रम की ओर आकृष्ट हो, ब्रम्ह के सत्य रुप पर पड़े माया के आवरण को भेद कर उन्होंने वेदांत के मूल मंत्र अहं ब्रम्हास्मि तत्त्वमषि को ग्रहण किया था। अतः एक साथ उनमें करुणा की अंतः सलिला सरस्वती और दर्शन की गंभीर स्रोतस्विनी गंगा के दर्शन होते हैं।''67

यह कहा जा सकता है कि निराला परिवार के साथ-साथ वेदांत से अर्थात रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी प्रेमानन्द आदि से प्रभावित थे। निराला अपने में और स्वामी विवेकानन्द में गहरी समानता भी स्थापित करते हैं। एक स्थान पर निराला कहते हैं- "जब मैं बोलता हूँ तो यह मत समझो कि निराला बोल रहा है। तब समझो मेरे भीतर विवेकानन्द बोल रहा है । यह तो तुम जानते ही हो कि मैने विवेकानन्द का सारा वर्क हजम कर लिया है।"68 स्पष्ट है कि निराला अपने आप को विवेकानन्द की प्रतिमूर्ति ही समझते थे यही कारण है कि उनकी कविताओं में सर्वत्र हमें विवेकानन्द के दार्शनिक सिद्धान्तों का परिचय मिलता है।

आत्मा के सम्बन्ध में उपनिषदों में विस्तार से विचार किया गया है। आत्मा अपने मूल रुप में सदैव बंधन मुक्त, अजर, अमर और अविनाशी है। उसमें ब्रम्ह के सभी रुप विद्यमान है। आत्मा के स्वरुप को स्पष्ट करते हुए रामकृष्ण परमहंस लिखते हैं - "जीव तो

सच्चिदानन्द स्वरुप है, परंतु इसी माया या अहंकार से वे नाना उपाधियों में पड़े हुए हैं, अपने स्वरुप को भूल गये हैं।"69 स्वामी विवेकानन्द ने मुक्तावस्था की बात कही और इस सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा यदि तुम साहस के साथ यह कह सको कि मैं मुक्त हूँ तो उसी मुहुर्त तुम मुक्त हो जाओगे। "यदि तुम कहो कि मैं बद्ध हूँ तो तुम बद्ध ही रहोगे।"70 निराला के जीवन और उनके विचार पर इन दोनों महानुभावों का जबरदस्त प्रभाव है। निराला जी ने जीवात्मा की मुक्तावस्था को अपनी कविता में ओजपूर्ण शैली में अभिव्यक्त किया है। जीवात्मा जब परमात्मा से मिलने के लिए अग्रसर होती है तो मार्ग में अनेक बाधा और अवरोध उत्पन्न होते हैं। ये अवरोध अज्ञान जन्य होते हैं, और अज्ञान माया के कारण होती है परंतु जैसे ही इस माया का आवरण हटने लगता है जीवात्मा अपने को मुक्त अनुभव करने लगती है उसे अपने स्वरुप का भान होने लगता है। जीवात्मा स्वतंत्र और बन्धनहीन महसूस करती है -

"पर, क्या है,
सब माया है-माया है,
मुक्त हो सदा ही तुम,
बाधा-विहीन बन्ध छन्द ज्यों,
डूबे आनन्द में सच्चिदानन्द रुप।"71

"पहुँचा मैं लक्ष्य पर।
अविचल निज शान्ति में
क्लान्ति सब खो गयी-
डूब गया अहंकार
अपने विस्तार में-
टूट गये सीमा-बन्ध-
छूट गया जड़ पिंण्ड-

ग्रहण देश-काल का,
निर्वीज हुआ मैं-
पाया स्वरुप निज,
मुक्ति कूप से हुई,
नीड़स्थ पक्षी की
तम विभावरी गयी।"72

वेदों में स्पष्ट कहा गया है कि आत्मा परमात्मा का अंश है। देखने में ये दोनों अलग-अलग दिखते हैं, किन्तु इन दोनों का पारस्परिक सम्बन्ध ऐसा है कि एक के बिना दूसरा अधुरा है। निराला भी इन दोनों के इस सम्बन्ध को स्वीकारते हुए कहते हैं -

"तुम तुंग हिमालय श्रृंग
और मैं चंचल-गति सुर-सरिता
तुम विमल हृदय उच्छ्वास
और मैं कांत-कामिनी-कविता।"73

अत्मा में परमात्मा का अंश सदैव विद्यमान रहता है, किन्तु विषय वासना में लिप्त होकर आत्मा माया के जल में फँसती रहती है और स्वयं को पीड़ित अनुभव करती रहती है। छटपटाती हुई आत्मा माया के इस बंधन से मुक्त होने के लिए बेचैन होती है तब जब उसे परम तत्त्व की याद आती है और उसे उस परब्रम्ह से जुड़ने की अभिलाषा होती है। उसे यह संसार सारहीन लगता है। जिस विषय वासना पर वह पहले लट्टू रहता था वही उसे अब बासी और फीकी लगती है और वह परमात्मा की ओर आकर्षित होता है।

"तुम से लाग लगी जो मन की
जग की हुई वासना बासी।"74

अब आत्मा विषय वासना से मुक्त होकर परमात्मा में एकाकार हो जाती है और इस स्थिति में वहाँ केवल ज्ञान होता है -

"वहाँ कहीं कोई है अपना? सब
सत्य नीलिमा में लयमान
केवल मैं केवल मैं केवल
मैं केवल ज्ञान।"75

यहाँ 'मैं' मैं नहीं परम तत्त्व परमात्मा है जो पूरे विश्व में व्याप्त है या पूरे विश्व में जिस अखिल तत्त्व की सत्ता है। निराला जी परमात्मा के इसी रुप का वर्णन करते हुए कहते हैं -

"तुम हो अखिल विश्व में
या यह अखिल विश्व है तुममें,
अथवा अखिल विश्व तुम एक
यद्यपि देख रहा हूँ तुममें भेद अनेक।"76

विद्वानों ने माया के अनेक रुपों की व्याख्या की है। माया वह तत्त्व है जो जो आत्मा और परमात्मा में भेद उत्पन्न करता है। मूल रुप से आत्मा और परमात्मा तो अभिन्न है किन्तु अपने भ्रम के कारण ही आत्मा अपने को परमात्मा से भिन्न समझने की भूल करती रहती है। स्पष्ट है कि आत्मा और परमात्मा को भिन्न रखने वाली शक्ति माया है। इसी कारण माया को अविद्या भी कहा जाता है। अविद्या के कारण ही प्राणी भ्रमित होकर भटकता है और दुखी होता है। स्वामी विवेकानन्द ने इसी माया को परपिभाषित किया है उसी परिभाषा को निराला अपने काव्य में कुछ इस प्रकार व्यक्त करते हैं-

"ब्यष्टि और समष्टि में नहीं है भेद,
भेद उपजाता भ्रम-
माया जिसे कहते है।"77

जीवात्मा और परमात्मा में भेद उपजाने वाला तत्व भ्रम ही माया है। इसी माया की निन्दा भक्तों, दार्शनिकों सभी ने की है। कबीर इसे महाठगिनी, सुरदास मोहपाश कहते हैं और इसकी निन्दा करते हैं। निराला भी इस माया की निन्दा 'माया' शीर्षक कविता में करते है और इसकी प्रशंसा भी -

"तू किसी के चित्त की है कालिमा
या किसी कमनीय की कमनीयता
या किसी दुखी जन की है आह तू।"78

"तू किसी भूले हुए की भ्रांति है
शान्ति पथ पर या किसी की गम्यता
शीत की नीरस निठुर तू यामिनी
या बसंत विभावरी की रम्यता।"79

इस सृष्टि का निर्माण ब्रम्ह द्वारा हुआ है। ब्रम्ह की इच्छा से ही सृष्टि स्वचालित होती है। वेदों की यह बात निराला काव्य में स्पष्ट देखी जा सकती है। 'पंचवटी प्रसंग' में राम का यह कहना -

"जिनकी इच्छा से संसार में संस्मरण होता-
चलते फिरते हैं जीव,
उन्हीं की इच्छा फिर सृजती है सृष्टि नयी।"80

इसी बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

ब्रम्ह ही तत्वों की संरचना और संहार का मूल है। संसार रुपी इस महानद की प्रखर धारा का वही पतवार है डगमगाती नैया का वही रक्षक है -

"डोलती नाव, प्रखर है धारा,
सँभालो जीवन खेवन हार
तिर तिर फिर फिर
प्रबल तरंगों में
घिरती है,
डोले पग जल पर
डगमग डगमग
फिरती है,
टूट गयी पतवार-
जीवन खेवनहार।"81

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि जिस ब्रम्ह की कल्पना, स्वरुप, गुण आदि की चर्चा वेद करता है उसी को निराला अपने ढ़ंग से अपने काव्य में अभिव्यक्त करते है। जिसमें छायावादी प्रभाव देखने को मिलता है।

निराला जी का जन्म भरे पुरे परिवार में हुआ था। माता-पिता, चाचा-चाची सभी थे। अवध के अपने गाँव को छोड़कर यह परिवार बंगाल की एक रियासत में जा बसा। महिषादल नामक रियासत में वन, प्रकृति फलों के बगीचे तालाब, नदियाँ फुलों के हरे भरे बागान सभी कुछ तो महिषादल में था, लेकिन जनता भुखी थी। यहीं सन् 1953 की बसंत पंचमी को पण्डित रामसहाय त्रिपाठी के घर बालक सूर्यकुमार का जन्म हुआ। तीन बर्ष की अवस्था में बालक के जीवन में कभी न पुरी होने वाली कमी छोड़ कर माता स्वर्ग चली गई। पिता रामसहाय अवध के सीधे-साधे किसान थे, जो सिपाही बन गये। पत्नी की मृत्यु

के उपरान्त उन्होंने दूसरा विवाह नहीं किया और पत्नी की मृत्यु के सत्रह साल बाद उनका भी देहान्त हो गया।

बालक सूर्यकुमार ने पिता से अच्छी काठी पाई थी। चौदह बर्ष की अवस्था में ही वह एक अच्छा युवक बन गया। अल्पावस्था में ही सूर्यकुमार का बिबाह मनोहरा देवी से हो गया। मनोहरा देवी ने सूर्यकुमार को हिन्दी साहित्य के प्रति जागरुक किया। बैबाहिक जीवन का सुख बहुत दिन तक बदा न था एक पुत्र और पुत्री को जन्म देकर मनोहरा देवी एन्फ्लुएंजा से ग्रस्त होकर स्वर्ग चली गई। इस बज्रपात से सूर्यकुमार का बुरा हाल था, वे घंटों गंगा किनारे बैठे बहती हुई लाशों का दृश्य देखा करते थे।

इस महामारी ने उनके परिवार के सभी बड़ो को निगल लिया। चार भतीजों सहित अपने खुद की दो संतानों का भार सूर्यकुमार पर आ पड़ा। नौकरी की खोज शुरु हुई । महिषादल में नहीं पटी उसे छोड़ना पड़ा। कलम की मजदुरी की मौलिक रचना अनुवाद जो काम मिलता करते। फिर मतवाला से जुड़े लेकिन साल भर में ही मतवाला से अलग हो गये। बाजार के काम से जो कुछ मिलता उसमें से खाने खरचने के बाद जो बचता भतीजो को भेजते थे इससे पता चलता है कि वे परिवार के प्रति उदासीन न थे। सन् 29 के एक पत्र में उन्होंने अपने भतीजों को लिखा है - खर्च की तकलीफ हो तो बर्तन बेच ड़ालना तकलीफ न सहना। शायद इन्हीं सब बाँतो को सोचकर उन्होंने सरोज स्मृति में लिखा है -

"दुख ही जीवन की कथा रही,
क्या कहुँ जो आज नहीं कही।"82

निराला जी बचपन से ही जिद्दी और नटखट स्वभाव के थे। उनके रुप सौंदर्य के कारण महिषादल की स्त्रियाँ उन्हें भरपूर प्यार करती इससे उनमें अहं भाव जागृत हो गया उन्हें लगने लगा कि अपने रुप सौन्दर्य के कारण वे सबसे अलग हैं और उन्हें सबसे प्यार

मिलना चाहिए। जब कभी उन्हें उनकी अपेक्षा से कम महत्व और प्यार मिलता तो वे क्रोधित हो जाते थे। डॉ. रामविलास के शब्दों में - "लाड़ प्यार से निराला स्वछंद, नटखट, खेलकुद में मस्त, मनमौजी, जिद्दी बन गये थे, इससे उनमें यह भाव दृढ़ हुआ कि हर आदमी का काम है कि उनकी इच्छा पूरी करे, वह जो कुछ करते हैं ठीक करते है, किसी को उनकी इच्छा पूर्ति में बाधा देने का अधिकार नहीं है।"83 इन सब बाँतो का परिणाम यह हुआ कि निराला उग्र स्वभाव के बनते चले गये। उनके स्वभाव में कटुता, उग्रता, क्रोध और उँची आवाज से दूसरों को दबाने का प्रयास करना, अपने साहित्य द्वारा कटु भाषा में दूसरों की आलोचना करना शामिल हो गये। उनके स्वभाव का दूसरा पहलु भी है और वह यह कि वे बड़े ही उदार स्वभाव के करुणा के सागर हैं। उनके इसी विलक्षण व्यक्तित्व से प्रभावित हो कर अवध प्रसाद वाजपेयी लिखते हैं - "निराला में बैसवाड़े के पानी में मोती की सी आब है, हिमाद्री का सा धैर्य है, समुद्र सा गाम्भीर्य है, एवं परमहंस का सा नीर-क्षीर विवेक है, साथ ही अनीति एवं अनाचारों के परास्त की खुली चुनौती है।"84 निराला हार मानने वालों में से न थे। वे कभी किसी के आगे झुके नहीं। "निराला में झुकने की गुँजाइश नहीं थी। उन्हें हिन्दी साहित्यकारों ने ही न आजमाया, परमात्मा ने भी उन्हें परखा और अच्छी तरह परखा।"85 बचपन से लेकर जवानी तक उन्होंने एक एक करके अपने सगे सम्बधियों की मृत्यु देखी इससे निराला दुःखी तो बहुत हुए परंतु हताश नहीं। अपने साहित्यिक जीवन में अपने आलोचकों की शाब्दिक मार खाकर वे इतने अन्तर्मुख हो गये कि वे समाज से प्रतिशोध न लेकर अपने आप से प्रतिशोध लेने लगे। अपने से ही प्रतिशोध लेते-लेते वे टूट गये लेकिन झुके कभी नहीं। शायद बैसबाड़े के रक्त ने उन्हें झुकना सिखाया ही नहीं था। उनका आदर्श हजरत जोश का यह शेर था -

"राहे खुद्दारी से मरकर भी भटक सकते नहीं।
टूट तो सकते हैं हम, लेकिन लचक सकते नहीं।"86

निराला अपने जीवन के रहस्य का स्वयं उद्‌घाटन करते हैं - "सोलह सत्रह साल की उम्र से भाग्य में जो विषय शुरु हुआ आज तक रहा। लेकिन मुझे इतना ही हर्ष है कि जीवन

के उसी समय से मैं जीवन के पीछे दौड़ा जीव के पीछे नहीं। इसलिए शायद बच जाउँगा। जीव के पीछे पड़ने वाला बड़े-बड़े मकान, राष्ट्र, चमत्कार जादू से प्रभावित होकर जीवन से हाथ धोता है, जीवन के पीछे पड़ने वाला जीवन के रहस्य से अनभिज्ञ नही रहता।"87

"निराला जी शुद्ध रुप से मानवतावादी थे। उनमें दीन-हीनों, गरीबों, बेकसों, अपाहिजों, बेकारों, दीन-दलितों, विधवाओं के प्रति सच्ची मुहब्बत थी। इन लोगों के लिए वे अपना सर्वस्व न्योछावर कर देते थे। उनकी उदारता, सरलता, स्पष्टता, निष्कपटता और सहृदयता के सम्बन्ध में उनके निकटस्थ मित्र, प्रेमी, लेखकों ने, विरोधकों ने भी अच्छा बुरा लिखा है। वैसे यह विवाद का विषय है इसलिए हम इस विवाद नें न पड़कर केवल इतना कहना चाहते हैं कि निराला मानव थे, मनुष्य थे। आर्थिक अभावों से वे हमेशा घिरे रहते परंतु हृदय की उदारता में कर्ण से कम नहीं थे।"88

निराला के उपलब्ध साहित्य से यह स्पष्ट होता है कि उनमे उदारता कूट-कूट कर भरी हुई थी तभी तो वे कभी किसी दरिद्र महिला के बच्चे को अपना शाल उढ़ा देते थे और कभी सड़क के किनारे ठिठुरती स्त्री को अपनी रजाई ओढ़ाकर आगे बढ़जाते हैं। नंगे पैर चलते ग्वाले को अपने नये जूते पहना देते हैं, इक्केवाला जब अपने बच्चों के माँगने पर पैसे नहीं दे पाता तो निराला उसे पाँच रुपया दे देते हैं। ट्रेन में भिखारियों को दस-दस के नोट बाँटते हैं। भिखारिन बेटा कह देती है तो उनकी जेब में जो कुछ भी हो उसके आँचल में डाल देते हैं। यह सभी तथ्य उवकी उदारता को ही प्रमाणित करते हैं। उनकी इसी उदारता से प्रभावित होकर श्री बलदेव सिंह कहते हैं - "उनके हृदय में पीड़ित मानवता के प्रति सेवानिष्ठा का अजस्र स्रोत बहता था। इसलिए उन्हें दलित वर्ग का मसीहा कहा गया।"89 डॉ. भगीरथ मिश्र उनके इस स्वभाव के सम्बन्ध में कहते है - "हिमालय के समान व्यक्ति की विशालता लिए हुए उनकी सहज द्रवणशीलता करुणा की गंगा बन जाती थी और उस समय वे किसी के भी दुःख को दूर करने के लिए अपना सबकुछ त्याग सकते थे।"90 वैसे तो समाज में बहुत से लोग होते हैं जो उदारता दिखाते

हैं असल में वह दिखावा ही होता है, परंतु निराला ऐसे न थे वे दिखाने और कहने में विश्वास नहीं करते थे, करने में विश्वास करते थे और जो उन्होंने किया आज हम उसी की बात करते हैं। निराला के सुपुत्र भी कहते हैं कि निराला ने कभी कोई कार्य छिपाकर नहीं किया उन्हें जो करणीय लगा उसे डंके की चोट पर किया छिपाव और दूराव से वे कोसो दूर रहते थे।

"निराला के व्यक्तित्व में निर्भिकता और उदण्डता कूट-कूट कर भरी है। श्मशान और नगर में वे पूर्ण स्वच्छन्दता से विचरते है। डलमऊ में अवधूत टीला उनका ठीहा है। महिषादल में भी वह मसान घूमने जाया करते थे। बरसात की अंधेरी रात में खेतों और मैदानों को पार करते हुए उन्हें जरा भी भय नहीं होता। उनकी निर्भिकता दुःसाहस की सीमा तक पहुँची हुई है इसका असर उनकी बातचीत पर भी है। वे बनावट शिष्टाचार तोड़ते हुए निर्द्वद भाव से बाँते करते है, सुनने वाला क्या सोचेगा और क्या समझेगा इसकी उन्हें परवाह नहीं रहती।"91 निराला इतने स्पष्टवादी ते कि वे जवाब देने में यह भी नहीं देखते थे कि सामने वाला कौन है "जब वे महात्मा गाँधी से यह कहते हैं - मैं हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति महात्मा गाँधी से मिलने आया हूँ, राजनीतिक नेता से नहीं, - तब भी उनका यही भाव था। फैजाबाद के प्रान्तीय साहित्य सम्मेलन में कुछ राजनीतिक नेताओं के हिन्दी साहित्य पर आक्षेप करने पर वहीं खड़े होकर उन्होंने मुँहतोड़ जवाब दिया। नेताओं के भक्तों ने बैठ जाओ,बैठ जाओ, कहकर उन्हें चुप कराने का विफल प्रयास किया। पंड़ित जवाहरलाल नेहरु से रेल की मुलाकात, पण्ड़ित गोविन्दवल्लभ पन्त से लखनऊ और दूसरी जगहों की भेंट के पीछे हिन्दी के समर्थन का भाव काम करता रहा है। जो भी मनुष्य साहित्य को उचित स्थान नहीं देता उसे ललकारने में वे कभी आगा पीछा नहीं करते। इस सम्बन्ध में एक रोचक घटना का वर्णन सुना था। लखनऊ में एक हिन्दी-हितैसी राजा साहब आये थे। उनके यहाँ कई हिन्दी साहित्यिक पलते है, इसलिए वह अपने को हिन्दी साहित्य का मर्मज्ञ और बहुत कुछ समझते हैं। मैने सुना है कि एक आध कवि ऐसे भी हैं जो रस संचार के लिए उपकरण भी जुटाते हैं। हिन्दी लेखकों पर

राजा साहब की कैसी दृष्टि पड़ती होगी इसका अन्दाजा लगाया जा सकता है। लखनऊ के एक प्रकाशक सम्पादक साहित्यित ने उनके सम्म्ान में चाय आदि का प्रबन्ध किया। लेखक भी बुलाये गये। जब राजा साहब तशरीफ लाये तो सब लोग उठकर खड़े हो गये। और लोगों का कहना था कि निराला इतना अशिष्ट था कि उठकर खड़ा भी नहीं हुआ। एक वयोबृद्ध साहित्यिक सबका परिचय कराने लगे - गरीब परवर, यह फलाने है, यह फलाने। इसी गरीब परवर की धुन में वह निराला जी तक पहुँचे और अपना सम्बोधन दुहराया ही था कि कविवर खड़े हो गये और राजा साहब को मुखातिब करके बोले - हम वह हैं जिनके बाप-दादों के बाप-दादो की पालकी तुम्हारे बाप-दादों के बाप-दादा उठाया करते थे। राजा साहब की दृष्टि से तुरंत ही अवज्ञा का भाव गायब हो गया।"92

निराला का व्यक्तित्व और उनका निजी जीवन किसी चलचित्र की रोंमांचक कहानी के कम न था जिसमें सभी प्रकार के मसाले थे जो किसी भी फिल्म को हिट बना सकते हैं। अर्थात निराला सचमुच निराले थे। वे हिन्दी के महाप्राण महामानव व्यक्तित्व सम्पन्न साहित्य शलाका पुरुष थे।

संदर्भ सूची -

1) छायावाद-नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 1990, पृ. 56

2) डॉ. रामकुमार सिंह-महाकवि निराला के दीर्घ प्रगीत, साहित्य रत्नालय कानपुर, 2009, पृ. 170

3) डॉ. रामकुमार सिंह-महाकवि निराला के दीर्घ प्रगीत, साहित्य रत्नालय कानपुर, 2009, पृ. 171

4) छायावाद-नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 1990, पृ. 21

5) छायावाद-नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 1990, पृ. 30

6) छायावाद-नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 1990, पृ. 30

7) छायावाद-नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 1990, पृ. 33

8) छायावाद-नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 1990, पृ. 33

9) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, बत्तीसवाँ संस्करण, पृ. 367, 368

10) जगदीश गुप्त - महादेवी वर्मा, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, 2008, पृ. 38

11) जगदीश गुप्त - महादेवी वर्मा, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, 2008, पृ. 46

12) महादेवी - परिक्रमा, 1974, पृ. 104

13) महादेवी वर्मा - साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध, 1960, पृ. 67

14) महादेवी वर्मा - आधुनिक कवि (भूमिका), पृ. सं. 10

15) महादेवी वर्मा - दीपशिखा, भारती भंड़ार इलाहाबाद, नवाँ संस्करण, पृ. सं. 143, 144

16) महादेवी वर्मा - यामा, छात्र संस्करण प्रथम, पृ. 41

17) महादेवी वर्मा - नीरजा, 1935, पृ. सं. 29

18) महादेवी वर्मा - सांध्यगीत, 1936, पृ. सं. 17

19) महादेवी वर्मा - सांध्यगीत, 1936, पृ. सं. 49

20) महादेवी वर्मा - नीरजा, 1935, पृ. सं. 91

21) महादेवी वर्मा - नीरजा, 1935, पृ. सं. 112
22) महादेवी वर्मा - रश्मि, 1936, पृ. सं. 54
23) महादेवी वर्मा - रश्मि, 1936, पृ. सं. 63
24) जगदीश गुप्त - महादेवी वर्मा, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, 2008, पृ. 112
25) जगदीश गुप्त - महादेवी वर्मा, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, 2008, पृ. 113
26) महादेवी वर्मा - नीहार(आँसू की माला) 1936, पृ. सं. 89
27) महादेवी वर्मा - नीरजा, 1935, पृ. सं. 111
28) महादेवी वर्मा - नीहार(अनोखी भूल) 1936, पृ. सं. 85
29) महादेवी वर्मा - नीरजा, 1935, पृ. सं. 26
30) जगदीश गुप्त - महादेवी वर्मा, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, 2008, पृ. 32
31) जयशंकर प्रसाह की प्रासंगिकता - प्रभाकर श्रोत्रिय, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 1990, पृ. 101, 102
32) जयशंकर प्रसाह की प्रासंगिकता - प्रभाकर श्रोत्रिय, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 1990, पृ. 2, 3
33) जयशंकर प्रसाह की प्रासंगिकता - प्रभाकर श्रोत्रिय, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 1990, पृ. 3
34) प्रसाद ग्रंथावली, भाग - 4, पृ. 524
35) प्रेमशंकर - प्रसाद का काव्य, पृ. सं. 260
36) जयशंकर प्रसाद - कामायनी
37) जयशंकर प्रसाद - कामायनी (आशा सर्ग)
38) जयशंकर प्रसाद - कामायनी
39) जयशंकर प्रसाद - कामायनी (आशा सर्ग)
40) गोस्वामी तुलसीदास - श्री रामचरित मानस, उत्तरकाण्ड, गीताप्रेस गोरखपुर, संवत् 2051 पृ. 17, 2-3
41) कबीर ग्रंथावली - नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, प्र. सं. पद सं. 187

42) प्रभाकर श्रोत्रिय - जयशंकर प्रसाद की प्रासंगिकता, प्रकाशक भारतीय ज्ञानपीठ, 1990, पृ. 37
43) चिदम्बरा - भूमिका , पृ. सं. 29
44) निराला - अनामिका, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1998, पृ. 110
45) निराला - अनामिका, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1998, पृ. 117
46) संपादक नन्दकिशोर नवल - निराला रचनावली, भाग - 1, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली - 2006, पृ. 297
47) संपादक नन्दकिशोर नवल - निराला रचनावली, भाग - 1, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली - 2006, पृ. 312
48) संपादक नन्दकिशोर नवल - निराला रचनावली, भाग - 2, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली - 2006, पृ. 374
49) संपादक नन्दकिशोर नवल - निराला रचनावली, भाग - 2, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली - 2006, पृ. 346
50) संपादक नन्दकिशोर नवल - निराला रचनावली, भाग - 2, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली - 2006, पृ. 378
51) संपादक नन्दकिशोर नवल - निराला रचनावली, भाग - 2, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली - 2006, पृ. 398
52) रामविलास सर्मा - निराला की साहित्य साधना, भाग - 2, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 1997, पृ. 102
53) मेजर डॉ. नारायण राऊत - निराला के काव्य का समीक्षात्मक अध्ययन, विद्या प्रकाशन, कानपुर, 2007, पृ. 165
54) डॉ. सुषमा पाल - छायावाद की दार्शनिक पृष्टभूमि, प्र. संस्करण, पृ. 17
55) संपादक नन्दकिशोर नवल - निराला रचनावली, भाग - 2, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली - 2006, पृ. 435
56) संपादक नन्दकिशोर नवल - निराला रचनावली, भाग - 1, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली - 2006, पृ. 58

57) डॉ. देवेन्द्रनाथ तिवारी - निराला काव्य में मानव मूल्य और दर्शन, प्रथम संस्करण, पृ. 258
58) संपादक नन्दकिशोर नवल - निराला रचनावली, भाग - 1, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली - 2006, पृ. 54
59) संपादन एवं चयन - वीणा दाढ़े, छायावाद और निराला, संजय प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृ. 154
60) संपादन एवं चयन - वीणा दाढ़े, छायावाद और निराला, संजय प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृ. 155
61) डॉ. रामनारायण सोनी - छायावादी काव्य का अनुशीलन
62) सुधाकर पाण्डेय एवं रामव्यास पाण्डेय - निराला की याद
63) रामविलास सर्मा - निराला की साहित्य साधना, भाग - 1, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 1997, पृ. 35
64) संपादक पद्मसिंह शर्मा कमलेश - निराला, प्रथम संस्करण, पृ. 39
65) राम अवध शास्त्री - निराला व्यक्ति और कवि, प्रथम संस्करण, पृ. 63
66) राम अवध शास्त्री - निराला व्यक्ति और कवि, प्रथम संस्करण, पृ. 63
67) संपादक पद्मसिंह शर्मा कमलेश - निराला, प्रथम संस्करण, पृ. 39
68) बरुआ - निराला अभिनन्दन ग्रंथ, स्वागत समिति, कलकत्ता, 1953, पृ. 114
69) अनु, निराला - रामकृष्ण वचनामृत, भाग - 1, प्रथम संस्करण, पृ. 185
70) विवेकानन्द - व्यवहारिक जीवन में वेदांत, श्री रामकृष्ण आश्रम, धन्तौली नागपुर, पंचम संस्करण, पृ. 89
71) संपादक नन्दकिशोर नवल - निराला रचनावली, भाग - 1, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली - 2006, पृ. 154
72) संपादक नन्दकिशोर नवल - निराला रचनावली, भाग - 1, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली - 2006, पृ. 184
73) संपादक नन्दकिशोर नवल - निराला रचनावली, भाग - 1, राजकमल प्रकाशन, नई

दिल्ली - 2006, पृ. 49
74) संपादक नन्दकिशोर नवल - निराला रचनावली, भाग - 2, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली - 2006, पृ. 435
75) संपादक नन्दकिशोर नवल - निराला रचनावली, भाग - 1, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली - 2006, पृ.
76) संपादक नन्दकिशोर नवल - निराला रचनावली, भाग - 1, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली - 2006, पृ. 113
77) संपादक नन्दकिशोर नवल - निराला रचनावली, भाग - 1, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली - 2006, पृ. 58
78) संपादक नन्दकिशोर नवल - निराला रचनावली, भाग - 1, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली - 2006, पृ. 42
79) संपादक नन्दकिशोर नवल - निराला रचनावली, भाग - 1, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली - 2006, पृ. 42
80) संपादक नन्दकिशोर नवल - निराला रचनावली, भाग - 1, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली - 2006, पृ. 59
81) संपादक नन्दकिशोर नवल - निराला रचनावली, भाग - 1, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली - 2006, पृ. 201
82) संपादक नन्दकिशोर नवल - निराला रचनावली, भाग - 1, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली - 2006, पृ. 324
83) रामविलास सर्मा - निराला की साहित्य साधना, भाग - 1, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 1997, पृ. 423
84) अवध प्रसाद वाजपेयी - टेगोर और निराला, प्रथम संस्करण, पृ. सं. 47
85) संपादक ओंकार शरद - निराला, प्रथम संस्करण, पृ. सं. 46
86) संपादक ओंकार शरद - निराला, प्रथम संस्करण, पृ. सं. 49
87) संपादक ओंकार शरद - निराला, प्रथम संस्करण, पृ. सं. 46
88) मेजर डॉ. नारायण राऊत - निराला के काव्य का समीक्षात्मक अध्ययन, विद्या

प्रकाशन, कानपुर, 2007, पृ. 27, 28
89) डॉ. सरोज मार्कण्डेय - निराला साहित्य में युगीन समस्याएँ, 1972, पृ. सं. 69
90) डॉ. भगीरथ मिश्र - निराला का काव्य, विनय प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण, पृ. सं. 17
91) डॉ. रामविलास शर्मा - निराला, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007, पृ. सं. 30
92) डॉ. रामविलास शर्मा - निराला, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007, पृ. सं. 30, 31